(समयसार) १३१ कलश है।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।१३१।।

[**ये केचन**] कोई भी अभी तक सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं। यह एक सिद्धान्त। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम से भी भिन्न पड़कर द्रव्य का आश्रय लेकर भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं। आहाहा! महासिद्धान्त है। अनन्त काल से जो कोई सिद्ध हुए, वे सब विकल्प से भिन्न पड़कर और आत्मा का अनुभव करके; उसका अनुभव छोड़कर —राग का अनुभव छोड़कर, स्वभाव का अनुभव करके सिद्ध हुए हैं। यह एक ही सिद्धान्त है, लो! आहाहा! कोई कहे व्यवहार दया, दान, व्रत और भक्ति करते हुए सिद्ध होते हैं, निश्चय होता है, यह बात झूठ है। आहाहा! कठिन काम है। पहले अपने आ गया है। संवर (होने का) पहला ही कारण भेदविज्ञान कहा है। भेदविज्ञान से ही (संवर) होता है। आहाहा!

आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभाव है। वह राग से भिन्न पड़कर, भेदविज्ञान से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। भेदविज्ञान से समकित को प्राप्त हुए, भेदविज्ञान से चारित्र को प्राप्त हुए, भेदविज्ञान से केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए, भेदविज्ञान से सिद्ध हुए—यह एक मार्ग है। आहाहा!

जो कोई सिद्ध हुए.. जो कोई सिद्ध हुए। किसी प्रकार से-भेद से, कोई जंगल में, कोई मेरुपर्वत से (हुए), एक ही मार्ग है, ऐसा कहते हैं। वैसे लो तो '**भूदत्थमस्सिदो**'

त्रिकाली भगवान आत्मा के आश्रय से ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। यहाँ कहा कि भेद से अर्थात् पर से भिन्नता से प्राप्त हुए। सब एक की एक बात है। आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, पंच महाव्रत के परिणाम हो, वे बन्ध के कारण हैं। उनसे भेदज्ञान करना, वह मुक्ति का कारण है।

जो कोई.. ऐसा कहा न? [**केचन किल**] **सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;..** आहाहा! अनन्त काल में एक ही मार्ग है, दूसरा मार्ग ही नहीं है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वह विकल्प से भिन्न पड़कर, राग से भिन्न पड़कर, सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए, राग से भिन्न पड़कर चारित्र को प्राप्त हुए, राग से भिन्न पड़कर शुक्लध्यान हुआ और राग के अत्यन्त अभाव से केवलज्ञान हुआ। राग का व्यवहारभाव कुछ भी मुक्ति को सहायक होता है, मदद करता है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;.. कौन? **जो कोई सिद्ध हुए..** आहाहा! **वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;..** [**ये केचन किल बद्धाः**] **जो कोई बँधे हैं..** अभी तक संसार में अनादि से भटकते हैं... आहाहा! वे **उसी के (-भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं।** दया, दानादि शुभराग का अभाव करके मुक्ति को प्राप्त करते हैं और अभाव नहीं किया, वे बँधे हैं। एक ही सिद्धान्त है। आहाहा! राग से भिन्न पड़कर स्वभाव (सन्मुख होना), यह एक ही मोक्ष का मार्ग है।

[**अस्य एव अभावतः बद्धाः**] राग के भेदज्ञान का अभाव और राग की एकताबुद्धि, वह बन्धन का कारण है। आहाहा! श्लोक तो बहुत संक्षिप्त परन्तु इसमें सार बहुत आया है। आहाहा! यह सब व्यवहार करते-करते होता है और निमित्त मिले तो अच्छा होता है, इन सबका यहाँ निषेध कर दिया है। निमित्त से भिन्न पड़कर, निमित्त की ओर के राग से भिन्न पड़कर, निमित्त की ओर का झुकाव है, वह राग है... आहाहा! उस राग से भिन्न पड़कर जो सिद्ध हुए हैं, वे इस प्रकार से सिद्ध हुए हैं, दूसरी कोई विधि नहीं है। यह संवर का अधिकार है। आहाहा! यहाँ तो कहे व्रत करो, तप करो, मन्दिर बनाओ, रथयात्रा निकालो, यह निकालो और अमुक करो, इसलिए उसमें से धर्म होगा और संवर होगा। उसका यहाँ निषेध करते हैं। आहाहा! जितनी बाह्य के लक्ष्य की प्रवृत्ति (होती है), वह बन्ध का ही कारण है। यह भेदज्ञान का अभाव, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! जितना

बन्ध के भाव से भेद करके स्वभाव का आश्रय लिया, वे सब सिद्ध हुए हैं। एक ही प्रकार-नम्बर है। दूसरा नम्बर इसमें नहीं मिलता। आहाहा! संवर का यह क्रम है। पहले से राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन (प्राप्त करे), पश्चात् राग से भिन्न पड़कर चारित्र (प्राप्त करे), पश्चात् आंशिक राग है, उससे भिन्न पड़कर शुक्लध्यान (प्राप्त करे), उससे केवलज्ञान (होता है)। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ' परमार्थ का पन्थ दो-तीन नहीं हैं। इस प्रकार ही है। आहाहा!

जो कोई बँधे हैं, वे इसके अभाव से बँधे हैं। कर्म के कारण बँधे हैं, ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! अभी तक जो बँधे हैं, वे कर्म के जोर से और कर्म के कारण बँधे हुए हैं, ऐसा नहीं है। भेदज्ञान के अभाव से बँधे हैं। आहाहा! राग से भिन्न पड़े बिना बँधे हैं। संसार में जितने अभी तक निगोदादि रहे, वे सब भेदज्ञान के अभाव से बँधे हुए पड़े हैं। आहाहा! निगोद के अनन्त भव (किये), वे भेदज्ञान के अभाव से भव हैं। आहाहा! एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव को दो-दो शरीर और एक-एक जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़, इतना जो बन्धभाव, उसके कारण भटकते हैं। आहाहा! कर्म के कारण नहीं। कर्म के कारण बँधे हुए नहीं हैं और कर्म के अभाव से नहीं। कर्म का अभाव स्वयं किया और उसमें गये हैं, तब मुक्त हुए हैं। आहाहा! कषाय की मन्दता, व्रत और तप और भक्ति की मन्दता कुछ भी सहायक हो, मुक्तिमार्ग को कुछ भी मदद हो, ऐसा बिल्कुल नहीं है। इसलिए कहा, [**केचन किल**] कोई भी निश्चय से। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

जो कोई बँधे हैं, **वे उसी के (-भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं।** आहाहा! उस राग से भिन्न नहीं करता और राग का एकत्व बन्ध किया है, उससे ही मिथ्यात्व है और बँधते हैं। आहाहा! यह मूल श्लोक है।

भावार्थ : अनादि काल से लेकर जब तक जीव को भेदविज्ञान नहीं है.. यह स्पष्टीकरण (करते हैं)। आहाहा! जब तक भगवान की भक्ति, विनय, यात्रा और पूजा नहीं की, तब तक उसे मुक्ति नहीं है—ऐसा नहीं है। आहाहा! भाई! इसने मन्दिर बनाये नहीं, दान किया नहीं, भगवान की भक्ति की नहीं... आहाहा! वे सब भाव परद्रव्य की ओर के उन्मुखता के सब भाव बन्ध के कारण हैं। वे बँधे हैं, वे उन्हें अपना मानकर बँधे हैं।

अनादि काल से.. अर्थात् इसमें तो ऐसा भी लिया कि निगोद के जीव को कर्म का जोर है, इसलिए वहाँ रहे हैं - ऐसा नहीं है। आया इसमें? निगोद के जीव अनन्त काल रहे और अभी कितने ही त्रस (पर्याय) को प्राप्त नहीं हुए और त्रस (पना) पायेंगे नहीं, उन्हें कर्म का जोर है, इसलिए (ऐसा) है, ऐसा नहीं है। भेदज्ञान का अभाव और राग की एकताबुद्धि पड़ी है। आहाहा! उससे निगोद में रहे हैं। आहाहा! कितने ही अनन्त काल में भी त्रस नहीं होंगे, वह भेदज्ञान के अभाव के कारण (नहीं होंगे)। आहाहा! महासिद्धान्त!

मुमुक्षु : निगोद में क्या भेदज्ञान करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञान करने की कहाँ बात है? वह नहीं है, इतनी बात है न! भेदविज्ञान का वहाँ अभाव है, इतना। भेदज्ञान का अभाव है या नहीं? वहाँ कहाँ भेदज्ञान करे? वहाँ आगे राग की एकताबुद्धि है न? वही भेदविज्ञान का अभाव है और उससे ही बँधे हुए हैं, ऐसा (कहना है।) भेदविज्ञान नहीं कर सकते, इसलिए (वहाँ हैं), ऐसा नहीं है परन्तु वहाँ भेदविज्ञान नहीं करते अर्थात् राग से एकत्वबुद्धि में ही वे पड़े हैं। आहाहा!

भगवान शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु को राग का अंश, जो राग का कण, निगोद को शुभभाव होता है, निगोद के जीव को शुभ-अशुभभाव दोनों होते हैं, उस शुभभाव को अपना मानकर बँधे हुए हैं, कर्म के कारण नहीं। आहाहा! भेदविज्ञान नहीं कर सकते, इसका अर्थ कि भेदज्ञान में अभेदपना मानते हैं, इसलिए अन्दर भेद नहीं कर सकते। आहाहा! अभेदरूप से राग को अभेदपने मानते हैं, भले निगोद हो, भले मन न हो। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, वहाँ निर्मलानन्द भगवान है, परन्तु वह मलिनता के भाव को एकत्वरूप से मानकर निगोद में और बन्धन में पड़े हैं। आहाहा! उन्हें भेदज्ञान करने की शक्ति नहीं है, उसका अर्थ यह कि अभेदपने की शक्ति है। भिन्न करने की शक्ति नहीं है, इसका अर्थ कि एकपने की मान्यता है। वह अस्ति है। आहाहा! राग का कण-शुभराग उसे होता है। ऐसे दया, दान के परिणाम उन्हें नहीं, परन्तु कषाय की मन्दता का शुभभाव निगोदिया को होता है। आहाहा! उस राग के अंश को अपना मानता है। वह तो वहाँ करता है। इसलिए अबन्धपने में न आकर, बन्ध में पड़े हैं, इस कारण से (पड़े हैं)। आहाहा! कोई ऐसा कहे कि नहीं; एकेन्द्रिय जीव को तो कर्म का जोर है, इसलिए वे बेचारे निकाल नहीं सकते। परन्तु पंचेन्द्रिय हुए, वे तो मन्द कर्म हैं, वे तो हल्के

हुए हैं। यहाँ तो एक ही सिद्धान्त—एकेन्द्रिय हो या दोइन्द्रिय हो अथवा पंचेन्द्रिय हो या नारकी हो या निगोद हो... आहाहा! स्वभाव के साथ राग का छोटे में छोटा कण में भी एकत्वबुद्धि से पड़े हैं, इसलिए बँधे हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

अनादि काल से लेकर जब तक जीव को भेदविज्ञान नहीं है.. देखा? वहाँ भेदविज्ञान की शक्ति नहीं है, (इसलिए) नहीं करते, ऐसा नहीं है परन्तु उन्हें भेदज्ञान नहीं है। आहाहा! **तब तक वह कर्म से बँधता ही रहता है..** आहाहा! मनुष्यपने में आया और मुनि हुआ, लो न! निगोद में उस स्थान में है, तो भी राग की एकत्वबुद्धि से बन्धन में है और मुनि-नग्न दिगम्बर मुनि, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह भी राग की एकताबुद्धि से बँधा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह प्राणी निगोद से लेकर, अनादि लिया न? **अनादि काल से लेकर..** इसमें निगोद का काल गौण किया है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

निगोद में से निकलना, त्रसपना प्राप्त करना, उसे भी चिन्तामणि जैसा-रत्न जैसा कहा है। छहढाला में (कहा है)। वह त्रस लट... लट... आहाहा! अनन्त-अनन्त काल में निगोद की दशा में, उसके दुःख की क्या बात करना? अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़ रह गया। दुःख अनन्त है। वास्तव में तो नारकी के दुःख से निगोद का दुःख अनन्तगुना है परन्तु दुःख की व्याख्या संयोग से करे तो उसे समझ में नहीं आये। आत्मा की हीन दशा की उत्कृष्टता है, वह दुःख है। आहाहा! यह निगोद के जीव की वह दशा है। आहाहा!

अनादि काल से लेकर.. आहाहा! अभव्य या भव्य, निगोद का जीव या जैन का साधु (होकर) नौवें ग्रैवेयक गया, वे सब... आहाहा! भेदविज्ञान नहीं है, तब तक वे बँधे हैं। आहाहा! भले वह पंच महाव्रत पालता हो, निरतिचार पालता हो... आहाहा! जो ज्ञान का व्यापार बारम्बार करते हों, (वह) ऐसा कहते हैं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग। वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नहीं है। सम्यक्त्व होने के पश्चात् इसका जो उपयोग (होता है) वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। आत्मा ज्ञान है, उसका जहाँ भान नहीं हुआ, वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है, यह कहाँ से आया? अभीक्ष्ण का तीर्थंकरगोत्र में आता है न? अभी न कहते हैं। वह अभीक्षण ज्ञानोपयोग है, ऐसा है, वैसा है। किन्तु मिथ्यात्व है, वहाँ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग कहाँ से आया? आहाहा! यह व्रत की क्रिया और तप की क्रिया अज्ञान में, उससे वहाँ धर्म मानता

है, वहाँ ज्ञान का अभीक्ष्ण उपयोग कहाँ आया ? अभीक्ष्ण राग का उपयोग है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! वीतरागमार्ग... आहाहा! यह तुम्हारे लाभुभाई को यहाँ सभा में बहुत बार याद करते हैं, हों! आहाहा! कैसा व्यक्ति! अभी बेसुध हो गया, कहो! आहाहा! ऐसी स्थिति, बापू! आहाहा! जीव को छूटने का मार्ग मिले बिना वह कहीं न कहीं अटक ही पड़ता है। आहाहा!

यहाँ तो कर्म का अनुभाग, रस और स्थिति बहुत लम्बी है, इसलिए वह भटकता है, ऐसा भी नहीं कहा और कर्म के रस की मन्द स्थिति हुई, इसलिए छूटने के पंथ में आयेगा, ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! यहाँ तो दो ही बात है, राग का कण चाहे जो हो, उससे पृथक् पड़े—भेदज्ञान (करे), वही मुक्ति की शुरुआत है क्योंकि स्वयं स्वरूप—मुक्तस्वरूप है। आहाहा! निगोद में भी आत्मा द्रव्यस्वभाव से तो मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! विश्वास कैसे बैठे ? आहाहा! मकड़ी की जाल की भाँति विकल्प की जाल में उलझ गया, उसे यह भगवान मुक्तस्वरूप है, (यह कैसे जँचे) ? भावबन्ध से रहित है, द्रव्यबन्ध तो परमाणु है, उनसे तो अत्यन्त अभाव ही है। आहाहा! भावबन्ध है, उससे भी अभावरूप स्वरूप है और उससे अभावस्वरूप करके और मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! यह श्लोक बहुत उत्कृष्ट है।

संसार में परिभ्रमण ही करता रहता है;.. भले वह पंच महाव्रत पाले, राग-दया, दान करे, भक्ति करे, भगवान की भक्ति धुन लगा दे, आहाहा! परन्तु वह राग है, उससे पृथक् पड़े बिना भटका ही करता है। आहाहा! यहाँ तो अभी बाह्य निवृत्ति लेने का समय भी नहीं मिलता। मेरा कुछ करूँ, विचारूँ तो सही। मेरे लिए विचार के लिए कुछ निवृत्ति तो लूँ, यह निवृत्ति भी नहीं मिलती। आहाहा! यहाँ तो राग से अत्यन्त निवृत्त होना है। आहाहा! बाहर से निवृत्त होने का अभी विचार का समय नहीं। आहाहा! अन्दर में राग का छोटे में छोटा कण, उससे भी निवृत्ति लेकर अभावस्वरूप करना है, तब इसे मुक्ति का मार्ग हाथ आता है। आहाहा! इतने मन्दिर बनाये और इतने करोड़ रुपये खर्च किये, इतनी पुस्तकें बनायीं, इसलिए वह बन्ध के अभाव के मार्ग में है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

एक ओर भगवान मुक्तस्वरूप, उसे बन्ध के राग के साथ एकत्व मानना... आहाहा!

अबद्धस्वरूप कहो, मुक्तस्वरूप कहो। अबद्ध १४-१५ गाथा में आता है न? '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध**' उस अबद्धस्वरूप के साथ कुछ भी राग के सम्बन्धवाला उसे मानना... आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि है। संसार—नरक और निगोद के भव करने के भाव के भाववाला है। आहाहा! राग के छोटे में छोटे कण को भी अपना माने तो कहते हैं कि **(अस्य एव अभावतः बद्धाः)** उसे भिन्न नहीं किया, इसलिए वे बँधे हुए हैं। आहाहा! श्लोक तो छोटा है (परन्तु) भाव बहुत गम्भीर है। आहाहा!

जिस जीव को भेदविज्ञान होता है, वह कर्मों से अवश्य छूट जाता है.. आहाहा! जिस जीव को राग के अंश से भी आत्मा भिन्न है, अत्यन्त निराला, मुक्त अबद्धस्वरूप है, ऐसा जिसे ज्ञान होता है, वह कर्म से छूटता ही है। आहाहा! इतनी तपस्या करे और इतने अपवास करे और इतने व्रत पाले तो कर्म से छूटता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! (क्या) कहा? **जिस जीव को भेदविज्ञान होता है, वह कर्मों से अवश्य छूट जाता है..** आहाहा! **मोक्ष को प्राप्त कर ही लेता है।** छूटत है अर्थात् राग से भिन्न पड़ता है, भेदज्ञान करता है, वह कर्म से छूटता है, मोक्ष प्राप्त करता ही है।

इसलिए कर्म बन्ध का-संसार का-मूल.. कर्मबन्ध का अर्थात्? कि **संसार का मूल भेदविज्ञान का अभाव ही है..** भाषा देखो! आहाहा! संसार का मूल मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व, भेदज्ञान का अभाव है, इसलिए मिथ्यात्व है। आहाहा! समय मिले जब तब और... आहाहा! विरोध करे, उसके सामने खड़ा रहना पड़े। अरे! खड़े क्या रहना? करे दुनिया। उसके विरोध का समाधान करने बैठे तो पार नहीं पड़ता। ऐसे बहुत लोग मिलते हैं। आहाहा! तेरे स्वभाव की ओर उन्मुख हो जा न! सब विरोध करे, वे उनके घर रहे। विरोधवाले को समाधान न हो, इससे तुझे क्या है? आहाहा! यह विरोध करते हैं तो उन्हें मैं उत्तर दूँ और फिर वे नहीं समझें तो अधिक उत्तर दूँ, वह भी वापस वहीं का वहीं अटकने का है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। दुनिया से अलग प्रकार है।

भेदविज्ञान का अभाव ही है.. कर्म बन्ध का-संसार का-मूल भेदविज्ञान का अभाव ही है और मोक्ष का पहला कारण.. अर्थात् मूलकारण। **भेदविज्ञान ही है।** लो! है न? संसार का मूलकारण भेदविज्ञान का अभाव ही है। आहाहा! संसार का मूलकारण कर्म है, निद्यत और निकाचित तथा यह कर्म है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

संसार का-मूल भेदविज्ञान का अभाव ही है.. भेदविज्ञान का अभाव 'ही' है। एकान्त से नहीं, कथंचित् कर्म से भी है, ऐसा कहो। कथंचित् कर्म से भी भटकता है, कथंचित् भेदविज्ञान के अभाव से भटकता है, ऐसा कहो। नहीं... नहीं... आहाहा! भेदविज्ञान के अभाव से ही भटकता है। आहाहा! सिद्धान्त तो देखो! सिद्धान्त। अर्थात् कि तेरे अधिकार की बात है, ऐसा कहते हैं। भटकने में भी तेरा अधिकार है—भेदविज्ञान का अभाव तथा छूटने में तेरा अधिकार है—भेदविज्ञान का सद्भाव। आहाहा! उसमें कोई परद्रव्य की अन्दर मदद-फदद या सहायता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह क्रियाकाण्डियों को तो कठोर लगे। क्रियाकाण्ड में लवलीन हों। आहाहा!

मुमुक्षु : क्रियाकाण्ड से ज्ञानकाण्ड होता है, ऐसा तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह निमित्त का ज्ञान कराया। प्रवचनसार में आता है। यह तो ऐसा था, उसका ज्ञान (कराया)। उससे होता है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। यहाँ कहते हैं कि भेदज्ञान से होता है और वहाँ कहे कि राग से होता है, (तब तो) विरोध कथन हुआ। वीतराग के वचन में विरोध नहीं होता। पूर्वापर विरोधरहित भगवान की वाणी है। आहाहा! जब तक यह न समझे, तब तक वह अज्ञान के कारण से संसार में है, कर्म के कारण से नहीं। भेदविज्ञान के अभाव के कारण से संसार है। आहाहा!

भेदविज्ञान के बिना.. राग के विकल्प से भिन्न पड़े बिना अन्तर क्रियाकाण्ड का राग है, भले व्रत का, तप का, अपवास का और भक्ति का (होवे), उस राग से भिन्न पड़े बिना इसे तीन काल में धर्म नहीं होगा। यह सब राग की क्रिया धर्म नहीं है। इनसे भिन्न (पड़े), तब धर्म होगा। आहाहा! जिससे भिन्न करना है, उससे वापस मुक्ति होगी? आहाहा! जिससे तो भिन्न करना है, उसके कारण मुक्ति का मार्ग आयेगा? आहाहा! **भेदविज्ञान के बिना कोई सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता।** एक बात यह की है।

यहाँ ऐसा भी समझना चाहिए कि-विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध.. बौद्ध अकेला विज्ञान ही माननेवाले हैं। अकेला विज्ञान जगत में है, दूसरा कुछ नहीं, ऐसा (वे) मानते हैं। **और वेदान्ती..** एक ही सर्व व्यापक आत्मा है, ऐसा मानते हैं। **जो कि वस्तु को अद्वैत कहते हैं..** अद्वैत आत्मा है। आत्मा और आत्मा का अनुभव, ऐसा द्वैतपना भी उसमें नहीं है, ऐसा वे लोग मानते हैं। भेदविज्ञान कहने से वे सब मिथ्या सिद्ध होते हैं, ऐसा कहते

हैं। भेदविज्ञान तो एक दूसरी चीज़ है, तो उससे पृथक् पड़ना है, परन्तु एक ही चीज़ है, (ऐसा कहो तो) पृथक् पड़ने का रहा किसके साथ? आहाहा! भेदविज्ञान में यह क्यों डाला? कि भेदविज्ञान में दो बात आती है। एक राग और एक आत्मा अथवा एक दूसरी चीज़ और एक स्वयं आत्मा, अतः दो है, उसमें से भेद किया जाता है, परन्तु एक ही है, उसमें भेद करने का कहाँ (रहा)? आहाहा! अकेला सर्व व्यापक आत्मा है, एक ही आत्मा वेदान्त कहता है। अभी इस वेदान्त का बड़ा पन्थ चलता है। निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सुधरे हुए में अभी यह चलता है। बातें करना, बस! बन्ध ही नहीं। आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। उसे कहते हैं, ऐसा माननेवाले को बन्ध से भिन्न करना तो रहा नहीं। एक ही वस्तु रही, उसमें दो तो आयी नहीं। आहाहा!

कितने ही इस जैन की निश्चयदृष्टि का वर्णन सुनते हुए वेदान्त जैसा हो जाता है, ऐसा लगता है। निश्चय की बातें सुनते हुए, आत्मा निर्मलानन्द शुद्ध चैतन्य का अनुभव, वह धर्म; दूसरा क्रियाकाण्ड का राग, वह धर्म नहीं है। तब वे कहते हैं कि देखो! वेदान्त भी ऐसा कहता है, इसलिए वेदान्तवत् यह जैन की शैली है। (किन्तु) ऐसा नहीं है। यह तो प्रकार ही अलग है। आहाहा!

विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध और वेदान्ती जो कि वस्तु को अद्वैत कहते हैं.. एक ही कहते हैं, दो नहीं। **और अद्वैत के अनुभव से ही सिद्धि कहते हैं..** अद्वैत का अनुभव, यह दो हो गये। **उनका, भेदविज्ञान से ही सिद्धि कहने से, निषेध हो गया;..** एक ही आत्मा है, सर्व व्यापक है और विज्ञानघन अकेला तत्त्व है, विज्ञान बौद्ध में ऐसा आता है। बौद्ध में एक वर्ग है। विज्ञानअद्वैतवादी-विज्ञान अकेला है, बस! और वे वेदान्ती (कहते हैं), एक ही आत्मा सर्व व्यापक है।

दोनों का, **भेदविज्ञान से ही सिद्धि कहने से, निषेध हो गया;..** कि दोनों मिथ्या हैं। **क्योंकि वस्तु का स्वरूप सर्वथा अद्वैत न होने पर भी..** सर्वथा। कथंचित् अद्वैत है। अर्थात् स्वयं गुण-पर्याय अभेद है, इस अपेक्षा से कथंचित् अभेद है। आहाहा! द्रव्य और पर्याय—ऐसे भेद हैं, वे अभेददृष्टि में वे भेद नहीं हैं, इस अपेक्षा से अद्वैत है, परन्तु वे लोग कहते हैं तद्नुसार अद्वैत नहीं है। बौद्ध अकेला ज्ञान ही मानता है और वे अकेला आत्मा मानते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! **उनके किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान कहा ही**

नहीं जा सकता;.. है? **क्योंकि वस्तु का स्वरूप सर्वथा अद्वैत न होने पर भी जो सर्वथा अद्वैत मानते हैं, उनके किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान कहा ही नहीं जा सकता;..** आहाहा!

जहाँ द्वैत (दो वस्तुएँ) ही नहीं मानते, वहाँ भेदविज्ञान कैसा? आहाहा! दो चीज़ माने नहीं, वहाँ भिन्न किससे करना? वह तो कुछ रहा नहीं। आहाहा! **यदि जीव और अजीव-दो वस्तुएँ मानी जायें..** जीव और अजीव, दो मानने में आवे **और उनका संयोग माना जाये..** वापस संयोग हो, संयोग न हो तो वह तो मुक्त है, मुक्त हुआ कहलाये। आहाहा! इसलिए भेद करना तो रहा नहीं, अनादि से मुक्त ही है—ऐसा नहीं है। **उनका संयोग माना जाये..** किनका? जीव और अजीव का। रागादि भी अजीव हैं। आहाहा! **तभी भेदविज्ञान हो सकता है,..** दो माने तो भेदविज्ञान बन सकता है। अकेले न्याय दिये हैं। आहाहा! **और सिद्धि हो सकती है।** एक ही माने, उसे भेदज्ञान नहीं होता और मुक्ति नहीं होती।

इसलिए स्याद्वादियों को.. अपेक्षा से कथन है। अनन्त गुण और पर्याय की अपेक्षा से आत्मा द्वैत भी है। अभेद की अपेक्षा से अद्वैत भी है। **स्याद्वादियों..** स्याद्वादी अर्थात् ऐसा स्याद्वादी, हों! स्याद्वादी का अर्थ ऐसा नहीं कि निमित्त से भी होता है और उपादान से भी होता है; व्यवहार से भी होता है (और) निश्चय से भी होता है, यह स्याद्वाद। यह स्याद्वाद नहीं है। इसमें वस्तु का स्वभाव है, उसे दो अपेक्षा से कहना, इसका नाम स्याद्वाद है। वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय अभेद है, तथापि गुण-पर्याय से भेद कहना, वह व्यवहार है और गुण-पर्याय से भेद होने पर भी, अकेला अभेद कहना, वह निश्चय है। परन्तु उसमें है, उस प्रकार से अनेकान्तपना आता है। उसमें न हो और अनेकान्तपना आवे, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

जीव और अजीव-दो वस्तुएँ मानी जायें और उनका संयोग माना जाये.. दो माने परन्तु संयोग न हो तो भी पृथक् करना नहीं आता। आहाहा! **तभी भेदविज्ञान हो सकता है, और सिद्धि हो सकती है। इसलिए स्याद्वादियों को ही सब कुछ निर्बाधतया सिद्ध होता है।** अपेक्षा से भगवान के वचन स्याद्वाद हैं, इसलिए वह सब उनका निर्बाधरूप से सिद्ध होता है। आहाहा! एकपना भी है, अनेकपना भी है—ऐसा स्याद्वाद

से सिद्ध होता है। एकपने द्रव्यरूप से द्रव्य वस्तु एक है और गुण-पर्याय की अपेक्षा से अनेक है—ऐसे दोनों प्रकार से सिद्ध हो सकता है। आहाहा! उसमें भी अनेकपने का आश्रय छोड़कर एकपने का आश्रय करना, वही मुक्ति का कारण है। अनेक और एक न हो तो अनेक से छूटकर एक में आना, यह नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है।

कलश-१३२

(मन्दाक्रान्ता)

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्राग-ग्राम-प्रलय-करणात्कर्मणां सम्वरेण।
बिभ्रत्तोषं परम-ममलालोक-मम्लान-मेकं,
ज्ञानं ज्ञाने नियत-मुदितं शाश्वतोद्योत-मेतत्।।१३२।।

इति सम्वरो निष्क्रान्तः।

इति श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ सम्वरप्ररूपकः पञ्चमोऽमः।

अब, संवर अधिकार पूर्ण करते हुए, संवर होने से जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान की महिमा का काव्य कहते हैं:-

श्लोकार्थ : [भेदज्ञान-उच्छलन-कलनात्] भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से [शुद्धतत्त्वउपलम्भात्] शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि हुई; शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि से [रागग्राम-प्रलयकरणात्] राग समूह का विलय हुआ; राग समूह के विलय करने से [कर्मणां संवरेण] कर्मों का संवर हुआ; और कर्मों का संवर होने से, [ज्ञाने नियतम् एतत् ज्ञानं उदितं] ज्ञान में ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ- [बिभ्रत् परमम् तोषं] कि जो ज्ञान परम सन्तोष को (परम अतीन्द्रिय आनन्द को) धारण करता है,

[अमल-आलोकम्] जिसका प्रकाश निर्मल है (अर्थात् रागादिक के कारण मलिनता थी, वह अब नहीं है), [अम्लानम्] जो अम्लान है (अर्थात् क्षायोपशमिक ज्ञान की भाँति कुम्हलाया हुआ-निर्बल नहीं है, सर्व लोकालोक के जाननेवाला है), [एकं] जो एक है (अर्थात् क्षयोपशम से जो भेद था, वह अब नहीं है) और [शाश्वत-उद्योतम्] जिसका उद्योत शाश्वत है (अर्थात् जिसका प्रकाश अविनश्वर है)।।१३२।।

टीका : इस प्रकार संवर (रंगभूमि में से) बाहर निकल गया।

भावार्थ : रंगभूमि में संवर का स्वांग आया था, उसे ज्ञान ने जान लिया; इसलिए वह नृत्य करके बाहर निकल गया।

सवैया तेईसा

भेदविज्ञानकला प्रगटै, तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही,
राग-द्वेष-विमोह सबहि गलि जाय, इमै दुठ कर्म रुकाही;
उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहु तोष धरै परमाताममाहीं,
यों मुनिराज भली विधि धारतु, केवल पाय सुखी शिव जाहीं।।

इस प्रकार श्री समयसार की (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री समयसार परमागम की) श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित आत्मख्याति नामक टीका में संवर का प्ररूपक पाँचवाँ अंक समाप्त हुआ।

श्लोक - १३२ पर प्रवचन

१३२, अन्तिम कलश न? **अब, संवर अधिकार पूर्ण करते हुए, संवर होने से जो ज्ञान हुआ उस ज्ञान की महिमा का काव्य कहते हैं:-** आहाहा! राग से भिन्न पड़कर आत्मा का ज्ञान विकसित हुआ, जो पर्याय में संकोच था, शक्ति में पूर्ण था। स्वभाव में पूर्ण था, पर्याय में संकोच था। वह राग से भिन्न पड़कर, जैसा स्वभाव में परिपूर्ण है, उसी प्रकार से पर्याय में परिपूर्ण हुआ। ऐसे ज्ञान की महिमा कहते हैं। आहाहा! अकेले न्याय के विषय भरे हैं।

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्राम-प्रलय-करणात्कर्मणां सम्वरेण।

बिभ्रत्तोषं परम-ममलालोक-मम्लान-मेकं,
ज्ञानं ज्ञाने नियत-मुदितं शाश्वतोद्योत-मेतत् ।।१३२।।

[भेदज्ञान-उच्छलन-कलनात्] भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से.. आहाहा! **कलनात्** है न? (अर्थात्) अभ्यास। पहले भेदज्ञान का **उच्छलन** अर्थात् प्रगट करना। **कलनात्** अर्थात् उसका अभ्यास, अनुभव। तीन शब्दों के तीन अर्थ हैं। भेदज्ञान—राग से, पुण्य से, दया, दान के विकल्प से भी भेदज्ञान-भिन्न (करे), वह भेदज्ञान **उच्छलन** (अर्थात्) उसे **प्रगट करने के.. कलनात्** (अर्थात्) अनुभव से, अभ्यास से।

[शुद्धतत्त्वउपलम्भात्] शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि हुई,.. उसे शुद्ध तत्त्व का अनुभव होता है। क्या कहा? राग और पर से भिन्न करके भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से **कलनात् शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि हुई,..** शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति होती है। भगवान पूर्ण शुद्ध है, ऐसी पर्याय में उसकी प्राप्ति होती है। आहाहा! **शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि से.. [रागग्राम-प्रलयकरणात्]** राग का समूह। ग्राम अर्थात् समूह। विकल्प का समूह का **विलय हुआ,..** आहाहा! **[रागग्राम-प्रलयकरणात्] राग-समूह का विलय हुआ, राग-समूह के विलय करने से [कर्मणां संवरेण] कर्मों का संवर हुआ..** आहाहा! क्रम रखा। जैसे वह भटकने का क्रम था (कि) आस्रव से कर्म होता है और कर्म से नोकर्म तथा नोकर्म से संसार। अब गुलाँट मारकर बात ऐसी रखी। आहाहा! **राग-समूह का विलय हुआ,..** वीतराग मूर्ति आत्मा राग से भिन्न पड़ने पर, **राग-समूह के विलय करने से.. [कर्मणां संवरेण] कर्मों का संवर हुआ..** अर्थात् राग-द्वेष हुए नहीं। राग-द्वेष हुए नहीं, इसलिए आस्रव बन्द हो गया। आहाहा!

और कर्मों का संवर होने से,.. [ज्ञाने नियतम् एतत् ज्ञानं उदितं] ज्ञान में ही निश्चल हुआ.. आहाहा! राग से भिन्न पड़ने पर आस्रव हुआ नहीं, इसलिए कर्म हुआ नहीं परन्तु यहाँ इस ओर उन्मुख होने से ज्ञान का विषय विशेष प्रगट हुआ। आहाहा! **कर्मों का संवर होने से, ज्ञान में ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान..** आहाहा! जो राग में एकत्व था, उसे तोड़कर वह ज्ञान में एकाग्र हुआ, त्रिकाली स्वरूप ज्ञान का पिण्ड, समूह, उसमें ज्ञान एकाग्र हुआ।

कर्मों का संवर हुआ और कर्मों का संवर होने से, ज्ञान में ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ.. आहाहा! जो शक्तिरूप से पूर्ण ज्ञान था, स्वभावरूप से पूर्ण ज्ञान था, वह राग से भिन्न पड़ने पर, संवर होने पर, शक्ति में से व्यक्तता पूर्ण की पूर्ण हुई। आहाहा! इसमें कितने भिन्न-भिन्न बोल (डाले हैं)। अभ्यास न हो, उसे ऐसा लगता है। ज्ञान, निश्चल हुआ ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ (अर्थात्) अन्तरज्ञान की पर्याय प्रगट हो गयी। आहाहा! वह राग में अटककर ज्ञान की हीनता थी, वह राग से छूटकर ज्ञान की अधिकता हो गयी। आहाहा!

कि जो ज्ञान परम सन्तोष को (परम अतीन्द्रिय आनन्द को) धारण करता है,.. आहाहा! राग के विकल्प से भिन्न पड़ता हुआ ज्ञान। वह अर्थात् आत्मा उदय हुआ अर्थात् पर्याय में प्रगट हुआ, वह अतीन्द्रिय आनन्द को लेता हुआ प्रगट हुआ। आहाहा! सन्तोष आनन्द प्रगट हुआ। शब्द ऐसा है न? परम सन्तोष-परम अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा। आहाहा! परम अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु था, वह राग से भिन्न पड़ने पर ज्ञान में ज्ञान स्थिर हुआ तो पर्याय में ज्ञान प्रगट होने पर आनन्द भी साथ में आया, साथ में सन्तोष आया। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान प्राप्त हुआ और सन्तोष आया, उसकी बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पूर्ण ज्ञान कहा न! यहाँ अन्तिम योगफल (करते हैं)।

परम सन्तोष को (परम अतीन्द्रिय आनन्द को) धारण करता है,.. [अमल-आलोकम्] जिसका प्रकाश निर्मल है.. जो ज्ञान-आत्मस्वभाव प्रगट हुआ, वह निर्मल है। ज्ञान शब्द से पूरा स्वभाव। पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ, वह निर्मल है। **(अर्थात् रागादिक के कारण मलिनता थी, वह अब नहीं है),.. [अम्लानम्] जो अम्लान है (अर्थात् क्षायोपशमिक ज्ञान की भाँति कुम्हलाया हुआ-निर्बल नहीं है,..)** देखा? पहले जो थोड़ा मलिन क्षायोपशम ज्ञान था, वह तो कुम्हलाया हुआ था, कुम्हला गया था। आहाहा! यह तो विस्तार से प्रस्फुटित हो उठा। कुम्हलाया हुआ ज्ञान इसमें रहा ही नहीं। आहाहा! इस भेदविज्ञान से यह फल आता है, ऐसा कहते हैं। इस पैसे में तो पाँच-पच्चीस करोड़, पचास करोड़, अरब-दो अरब (होवे वहाँ) अवधि आती है। यहाँ तो हद नहीं है, कहते हैं। आहाहा! जो ज्ञान बेहद अनन्त था; वह ज्ञान, ज्ञान में स्थिर होने पर ज्ञान प्रगट हुआ,

उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ। सन्तोष आया, ज्ञान आया, अब कोई इच्छामात्र रही नहीं। आहाहा!

अम्लान है (अर्थात् क्षायोपशमिक ज्ञान की भाँति कुम्हलाया हुआ-निर्बल नहीं है, सर्व लोकालोक के जाननेवाला है),.. देखा? पूर्ण जो हो गया न! **एक है..** वे मति, श्रुत, और अवधि उनमें भेद था, वह भेद मिट गया। एक ज्ञान, अकेला केवलज्ञान (प्रगट हुआ)। भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते ज्ञान अकेला पूर्ण रह गया। आहाहा! **(अर्थात् क्षयोपशम से जो भेद था, वह अब नहीं है) और [शाश्वत-उद्योतम्] जिसका उद्योत शाश्वत है..** अर्थात् प्रगटा, सो प्रगटा। अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहेगा। क्षयोपशम ज्ञान तो गिर भी जाए। यह तो क्षायिक ज्ञान हो गया। अविनश्वर ज्ञान। **(जिसका प्रकाश अविनश्वर है)।**

टीका : इस प्रकार संवर (रंगभूमि में से) बाहर निकल गया। संवर हुआ, उसे पूर्ण दशा हो गयी, इसलिए संवर रहा नहीं। राग से भिन्न पड़कर संवर हुआ और उसमें से पूर्ण दशा हुई, इसलिए अब संवर रहा नहीं। संवर निकल गया, अकेला केवलज्ञान हुआ।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)